

जित्वाशेषपरीषहान्दृढतरान्हत्वा च मोहादिकान्नाना जन्मशतोरुकष्टजनकान्क्षिप्त्वाशु कर्मारिकान्।
संप्राप्तोक्षयमोक्षसौख्यमतुलं स श्रीजिनः शं क्रियात्संपूज्योभयघोषनामकलितो नित्यं सतां सेवितः ॥१९॥
इति कथाकाशे श्रीमदभयघोषमुनेराख्यानं समाप्तम्।

६८. श्रीविद्युच्चरमुनेराख्यानम्

सर्वसौख्यप्रदं नत्वा जिनेन्द्रं भुवनोत्तमम्। वक्ष्ये विद्युच्चराख्यानं विख्यातं मुनिभाषितम् ॥१॥
मिथिलाख्यपुरे राजा सुधीर्वामरथोभवत्। तत्पुत्रो यमदण्डोभूच्चोरो विद्युच्चरो महान् ॥२॥
नाना विज्ञानसम्पन्नो निष्पन्नश्चोरकर्मणि। दिनेऽसौ कुष्ठिरूपेण चोरो मायायुतस्तदा ॥३॥
क्वचिद्वेवकुले शून्ये रंको भूत्वा च तिष्ठति। रात्रौ दिव्यनरो भूत्वा चोरो भोगान्करोति च ॥४॥
एकदा तस्य भूपस्य रात्रौ हारं गृहीतवान्। प्रभाते यमदण्डाख्यं राजा वामरथोवदत् ॥५॥
चोरेण दिव्यरूपेण मोहयित्वा च मां पुनः। हारो मे संहतः शीघ्रं यमदण्ड समानय ॥६॥
तं हारं सप्त रात्रिभिर् नान्यथा निग्रहं तव। करिष्यामीति तच्छ्रुत्वा तत्पुत्रः स विचक्षणः ॥७॥

सत्पुरुषों द्वारा सेवा किए गए वे अभयघोष मुनि मुझे भी मोक्ष का सुख दें, जिन्होंने दुःसह परीषह को जीता, आत्मशत्रु राग, द्वेष, मोह, क्रोध, मान, माया, लोभ आदि को नष्ट किया और जन्म-जन्म में दारुण दुःखों के देने वाले कर्मों का क्षय कर मोक्ष का सर्वोच्च सुख, जिस सुख की कोई तुलना नहीं कर सकता, प्राप्त किया ॥१९॥

६८. विद्युच्चर मुनि की कथा

सब सुखों के देने वाले और संसार में सर्वोच्च गिने जाने वाले जिनेन्द्र भगवान् को नमस्कार कर शास्त्रों के अनुसार विद्युच्चर मुनि की कथा लिखी जाती है ॥१॥

मिथिलापुर के राजा वामरथ के राज्य में इनके समय कोतवाल के ओहदे पर एक यमदण्ड नाम का मनुष्य नियुक्त था। वहीं एक विद्युच्चर नाम का चोर रहता था। यह अपने चोरी के फन में बड़ा चलता हुआ था। सो यह क्या करता कि दिन में तो एक कोढ़ी के वेष में किसी सुनसान मन्दिर में रहता और ज्यों ही रात होती कि एक सुन्दर मनुष्य का वेष धारण कर खूब मजा-मौज मारता। यही ढंग इसका बहुत दिनों से चला आता था। पर इसे कोई पहचान न सकता था। एक दिन विद्युच्चर राजा के देखते-देखते खास उन्हीं के हार को चुरा लाया। पर राजा से तब कुछ भी न बन पड़ा। सुबह उठकर राजा ने कोतवाल को बुलाकर कहा-देखो, कोई चोर अपनी सुन्दर वेषभूषा से मुझे मुग्ध बनाकर मेरा रत्न-हार उठा ले गया है। इसलिए तुम्हें हिदायत की जाती है कि सात दिन के भीतर उस हार को या उसके चुरा ले जाने वाले को मेरे सामने उपस्थित करो, नहीं तो तुम्हें इसकी पूरी सजा भोगनी पड़ेगी। जान पड़ता है तुम अपने कर्तव्य पालन में बहुत त्रुटि करते हो। नहीं तो राजमहल में से चोरी हो जाना कोई कम आश्चर्य की बात नहीं है। “हुक्म हुजूर का” कहकर कोतवाल चोर के ढूँढ़ने को

नत्वा नृपं पुरादौ च तं गवेषयितुं गतः। दृष्ट्वा सर्वत्र यत्नेन ततः सप्तमवासरे ॥८॥
 शून्यालये समालोक्य तं नीत्वा च नृपान्तिकम्। सुधीः प्राह नरेन्द्राय तस्करो दुष्टमानसः ॥९॥
 तेनोक्तं नैव चोरोहं कोटपालः पुनर्जगौ। अयं देव भवत्येव तस्करो नात्र संशयः ॥१०॥
 तदा राज्ञो जनैः प्रोक्तं देवासौ तलरक्षकः। चोराभावे महारंकं मारयत्येव साम्प्रतम् ॥११॥
 ततस्तेन तत्कारेण नीत्वा तं निजमन्दिरम्। माघमासे महाशीत-तोयसेचनकादिभिः ॥१२॥
 तापताडनबन्धोरुद्वात्रिंशदुष्कदर्थनैः। पीडितोपि वदत्येष नाहं चोर इति स्फुटम् ॥१३॥
 प्रभाते भूपतेरग्रं नीत्वा तं तलरक्षकः। संजगाद नरेन्द्रासौ सर्वचोरशिरोमणिः ॥१४॥
 स च प्राह महादस्युर्नाहं चोरो भवाम्यहो। चोराणां साहसो गूढो वर्ण्यते केन भूतले ॥१५॥

निकला। उसने सारे शहर की गली-कूँची, घर-बार आदि एक-एक करके छान डाला, पर उसे चोर का पता कहीं न चला। ऐसे उसे छह दिन बीत गए। सातवें दिन वह फिर घर से बाहर हुआ। चलते-चलते उसकी नजर एक सुनसान मन्दिर पर पड़ी। वह उसके भीतर घुस गया। वहाँ उसने एक कोढ़ी को पड़ा पाया। उस कोढ़ी का रंग ढंग देखकर कोतवाल को कुछ सन्देह हुआ। उसने उससे कुछ बातचीत इस ढंग से की कि जिससे कोतवाल उसके हृदय का कुछ पता पा सके। यद्यपि उस बातचीत से कोतवाल को जैसी चाहिए थी वैसी सफलता न हुई, पर तब भी उसके पहले शक को सहारा अवश्य मिला। कोतवाल उस कोढ़ी को राजा के पास ले गया और बोला-महाराज, यही आपके हार का चोर है। राजा के पूछने पर उस कोढ़ी ने साफ इनकार कर दिया कि मैं चोर नहीं हूँ। मुझे ये जबरदस्ती पकड़ लाये है। राजा ने कोतवाल की ओर नजर की। कोतवाल ने फिर भी दृढ़ता के साथ कहा कि महाराज, यही चोर है। इसमें कोई सन्देह नहीं। कोतवाल को बिना कुछ सबूत के इस प्रकार जोर देकर कहते देखकर कुछ लोगों के मन में यह विश्वास जम गया कि यह अपनी रक्षा के लिए जबरन इस बेचारे गरीब भिखारी को चोर बताकर सजा दिलवाना चाहता है। उसकी रक्षा हो जाए, इस आशय से उन लोगों ने राजा से प्रार्थना की कि महाराज, कहीं ऐसा न हो कि बिना ही अपराध के इस गरीब भिखारी को कोतवाल साहब की मार खाकर बेमौत मर जाना पड़े और इसमें कोई सन्देह नहीं कि ये इसे मारेंगे अवश्य। तब कोई ऐसा उपाय कीजिए, जिससे अपना हार भी मिल जाए और बेचारे गरीब की जान भी न जाए। जो हो, राजा ने उन लोगों की प्रार्थना पर ध्यान दिया या नहीं, पर यह स्पष्ट है कि कोतवाल साहब उस गरीब कोढ़ी को अपने घर लिवा ले गए और जहाँ तक उनसे बन पड़ा। उन्होंने उसके मारने पीटने, सजा देने, बाँधने आदि में कोई कसर न की। वह कोढ़ी इतने दुःसह कष्ट दिये जाने पर भी हर बार यही कहता रहा कि मैं हर्गिज चोर नहीं हूँ। दूसरे दिन कोतवाल ने फिर उसे राजा के सामने खड़ा करके कहा-महाराज, यही पक्का चोर है। कोढ़ी ने फिर भी यही कहा कि महाराज मैं हर्गिज चोर नहीं हूँ। सच है, चोर बड़े ही कट्टर साहसी होते हैं ॥२-१५॥

दत्वाभयप्रदानं च तं राज्ञो भणितस्तदा । सत्यं ब्रूहि महाधीर किं त्वं चोरो न वेति च ॥१६॥
तेनोक्तं तत्स्करेणैवं ततो निर्भयचेतसा । अहो नरेन्द्र चोरोहं सत्यस्ते तलरक्षकः ॥१७॥
ततो वामरथो राजा महाविस्मयतो जगौ । द्वात्रिंशद्वण्डनैः कष्टं कथं रे निर्जितं त्वया ॥१८॥
चोराग्रणीस्तदावोचद्-भूपाल मया श्रुतम् । मुनेः पार्श्वे महादुःखं यत्कूरं नरकोद्भवम् ॥१९॥
तस्मात्कोटिप्रभागं तु नैतद्दुःखं भवेत्परम् । संचिन्त्येति स्वचित्तेहं संजातस्तत्क्षमः प्रभो ॥२०॥
हृष्टो राजा जगादैवं वरं प्रार्थय भो भट । तेनोक्तं भो नराधीश दीयते भवता द्रुतम् ॥२१॥
दानं मेऽस्मै सुमित्राय तत्पराय सुनिर्भयम् । तच्छ्रुत्वा स महीनाथो महाश्चर्यपरोवदत् ॥२२॥
कथं भो कोट्टपालोयं मित्रं तेऽत्र प्रवर्तते । स पुनस्तत्स्करो ग्राह श्रूयतां भो महीपते ॥२३॥
दक्षिणाख्यपथेऽभीरदेशे वेनानदीतटे । पुरेवेनातटे ख्याते जितशत्रुर्महीपतिः ॥२४॥
राज्ञी जयावती तस्याः पुत्रो विद्युच्चरोस्म्यहम् । श्रूयतां च तथा देव तत्रैव नगरे शुभे ॥२५॥
तत्पारो यमपाशोभूतद्भार्या यमुना सती । तयोश्च यमदण्डोसौ पुत्रो जातो गुणोज्ज्वलः ॥२६॥

तब राजा ने उससे कहा—अच्छा, मैं तेरा सब अपराध क्षमा कर तुझे अभय देता हूँ, तू सच्चा—सच्चा हाल कर दे कि तू चोर है या नहीं? राजा से जीवनदान पाकर उस कोढ़ी या विद्युच्चर ने कहा—यदि ऐसा है तो लीजिए कृपानाथ, मैं सब सच्ची बात आपके सामने प्रकट करे देता हूँ। यह कहकर वह बोला—राजाधिराज, अपराध क्षमा हो। वास्तव में मैं ही चोर हूँ। आपके कोतवाल साहब का कहना सत्य है। सुनकर राजा चकित हो गए। उन्होंने तब विद्युच्चर से पूछा—जब तू चोर था तब फिर तूने इतनी मारपीट कैसे सह ली रे? विद्युच्चर बोला—महाराज, इसका तो कारण यह है कि मैंने एक मुनिराज द्वारा नरकों के दुःखों का हाल सुन रखा था। तब मैंने विचारा कि नरकों के दुःखों में और इन दुःखों में तो पर्वत और राई का सा अन्तर है और जब मैंने अनन्त बार नरकों के भयंकर दुःख, जिनके कि सुनने मात्र से ही छाती दहल उठती है, सहे हैं तब इन तुच्छ, ना कुछ चीज दुःखों का सह लेना कौन बड़ी बात है! यही विचार कर मैंने सब कुछ सहकर चूँ तक भी नहीं की। विद्युच्चर से उसकी सच्ची घटना सुनकर राजा ने खुश होकर उसे वर दिया कि तुझे ‘जो कुछ माँगना हो माँग’। मुझे तेरी बातें सुनने से बड़ी प्रसन्नता हुई तब विद्युच्चर ने कहा—महाराज, आपकी इस कृपा का मैं अत्यन्त उपकृत हूँ। इस कृपा के लिए आप जो कुछ मुझे देना चाहते हैं वह मेरे मित्र इन कोतवाल साहब को दीजिए। राजा सुनकर और भी अधिक अचम्भे में पड़ गए। उन्होंने विद्युच्चर से कहा—क्यों यह तेरा मित्र कैसे है? विद्युच्चर ने तब कहा—सुनिए महाराज, मैं सब आपको खुलासा सुनाता हूँ। यहाँ से दक्षिण की ओर आभीर प्रान्त में बहने वाली वेना नदी के किनारे पर बेनातट नाम का एक शहर बसा हुआ है। उसके राजा जितशत्रु और उनकी रानी जयावती ये मेरे माता-पिता हैं। मेरा नाम विद्युच्चर है। मेरे शहर में एक यमपाश नाम के कोतवाल थे। उनकी स्त्री यमुना थी। ये आपके कोतवाल यमदण्ड साहब उन्हीं के पुत्र हैं। हम दोनों एक ही गुरु के पास पढ़े हुए हैं। इसलिए तभी

एकोपाध्यायसान्निध्ये मया चोरागमः सुधीः। अनेन कोट्टपालस्य शास्त्रं संपठितं विभो ॥२७॥
 द्वाभ्यां कृत्वा प्रतिज्ञेति मयोक्तं तत्र गर्वतः। यत्र रे यमदंडं त्वं तल्लारस्तपुरे मया ॥२८॥
 कर्त्तव्या चोरिकावश्यं तच्छ्रुत्वानेन जल्पितम्। यत्र त्वं तस्करस्तत्र मया रक्षा विधीयते ॥२९॥
 एकदा मे पिता देव जितशत्रुर्गुणाकरः। दत्त्वा राज्यं च मे प्राज्यं जैनीं दीक्षां गृहीतवान् ॥३०॥
 यमपाशस्तल्लारस्तु समर्प्यास्मै निजं पदम्। सोपि जातो मुनिर्धीमान्यमदण्डः प्रभीतवान् ॥३१॥
 मदीयभयतो राजं-स्त्वदीयमिथिलापुरम्। समागत्य तल्लारोयं संजातो यमदण्डकः ॥३२॥
 तत्प्रतिज्ञावशाद्देव समागत्यात्र पत्तने। संगवेषयितुं चामुं चोरो जातोहमद्भुतम् ॥३३॥
 इत्युक्त्वा हारपर्यन्तं कथयित्वा च वृत्तकम्। गृहीत्वा यमदण्डं स्वं पुरं विद्युच्चरो गतः ॥३४॥
 तत्र वैराग्यभावेन संप्रविश्य स्वमन्दिरम्। सुधीर्विद्युच्चरः सोपि जैनतत्त्वविदाम्बरः ॥३५॥
 राज्यं दत्त्वा स्वपुत्राय जिनस्नपनपूर्वकम्। भूरिराजसुतैः सार्द्धं मुनिर्भूत्वा विचक्षणः ॥३६॥
 कुर्वस्तपो जिनेन्द्रोक्तं स्वर्गमोक्षसुखप्रदम्। भव्यान्सम्बोधयन्नुच्चैर्विहरंश्च महीतले ॥३७॥

से मेरी इनके साथ मित्रता है। विशेषता यह है कि इन्होंने तो कोतवाली सम्बन्धी शास्त्राभ्यास किया था और मैंने चौर्यशास्त्र का। यद्यपि मैंने यह विद्या केवल विनोद के लिए पढ़ी थी, तथापि एक दिन हम दोनों अपनी-अपनी चतुरता की तारीफ कर रहे थे; तब मैंने जरा घमण्ड के साथ कहा-भाई, मैं अपने फन में कितना होशियार हूँ, इसकी परीक्षा मैं इसी से कराऊँगा कि जहाँ तुम कोतवाली के ओहदे पर नियुक्त होगे, वहीं मैं आकर चोरी करूँगा। तब इन महाशय ने कहा-अच्छी बात है, मैं भी उसी जगह रहूँगा जहाँ तुम चोरी करोगे और मैं तुमसे शहर की अच्छी तरह रक्षा करूँगा। तुम्हारे द्वारा मैं उसे कोई तरह की हानि न पहुँचने दूँगा ॥१६-२९॥

इसके कुछ दिनों बाद मेरे पिता जितशत्रु मुझे सब राजभार दे जिनदीक्षा ले गए। मैं तब राजा हुआ और इनके पिता यमपाश भी तभी जिनदीक्षा लेकर साधु बन गए। इनके पिता की जगह तब इन्हें मिली। पर ये मेरे डर के मारे मेरे शहर में न रहकर यहाँ कोतवाली के ओहदे पर नियुक्त हुए। मैं अपनी प्रतिज्ञा के वश चोर बनकर इन्हें ढूँढ़ने को यहाँ आया। यह कहकर फिर विद्युच्चर ने उनके हार के चुराने के सब बातें कह सुनाई और फिर यमदण्ड को साथ लिए वह अपने शहर में आ गया ॥३०-३४॥

विद्युच्चर को इस घटना से बड़ा वैराग्य हुआ। उसने राजमहल में पहुँचते ही अपने पुत्र को बुलाया और उसके साथ जिनेन्द्र भगवान् का पूजा-अभिषेक किया। इसके बाद वह सब राजभार पुत्र को सौंपकर आप बहुत से राजकुमारों के साथ जिनदीक्षा ले मुनि बन गया ॥३५-३६॥

यहाँ से विहार कर विद्युच्चर मुनि अपने सारे संघ को साथ लिए देश विदेशों में बहुत घूमे-फिरे। बहुत से बे-समझ या मोह-माया में फँसे हुए जनों को इन्होंने आत्महित के मार्ग पर लगाया

मुनिपंचशतैर्युक्तो विरक्तो मदनादिषु। ताम्रलिप्तपुरीं प्राप्तो न लिप्तो मोहकईमैः ॥३८॥
 पुरप्रवेशे तत्रासौ प्रोक्तश्चामुण्डया मुनिः। भो मुने मम पूजाद्या यावत्कालं समाप्यते ॥३९॥
 तावत्त्वया न कर्त्तव्यः प्रवेशस्ताम्रलिप्तके। देव्यापि वारितः शिष्यैः प्रेरितो मुनिसत्तमः ॥४०॥
 तदा पुरं प्रविश्योच्चैः पुरः पश्चिमभागके। प्रकारस्य समीपे तु शिष्यवर्गैः समन्वितः ॥४१॥
 रात्रौ सत्प्रतिमायोगे संस्थितो निश्चलाशयः। चामुण्डया तदा शीघ्रं प्रचण्डक्रोधचेतसा ॥४२॥
 कपोतकप्रमाणोरुदंशकैर्मशकैस्तया। उपसर्गो महाश्चक्रे तदा विद्युच्चरो मुनिः ॥४३॥
 महावैराग्यसंयुक्तः सोढ्वाशेषपरीषहम्। शुक्लध्यानप्रभावेन हत्वा कर्मारिसंचयम् ॥४४॥
 केवलज्ञानमुत्पाद्य संप्राप्तो मोक्षमक्षयम्। सोस्माकं पूजितो नित्यं प्रकुर्याच्छाश्वतीं श्रियम् ॥४५॥

इन्द्रैश्चारुनरेन्द्रखेचरतरैर्नागेन्द्रयक्षेश्वरैः

प्रोद्यत्पञ्चविधप्ररत्नमुकुटप्रव्यक्तभाभासुरैः ।

नित्यं यस्तु विशुद्धभक्तिभरतः संपूज्य चाराधितः

स श्रीमान्मम मङ्गलं शिवपतिर्दद्याच्च विद्युच्चरः ॥४६॥

इति कथाकोशे विद्युच्चरमुनेराख्यानं समाप्तम्।

और स्वयं भी काम, क्रोध, लोभ, राग, द्वेषादि आत्मशत्रुओं का प्रभुत्व नष्ट कर उन पर विजय लाभ किया। आत्मोन्नति के मार्ग में दिन ब दिन बेरोक-टोक ये बढ़ने लगे। एक दिन घूमते-फिरते ये ताम्रलिप्तपुरी की ओर आए। अपने संघ के साथ वे पुरी में प्रवेश करने को ही थे कि इतने में वहाँ की चामुण्डा देवी ने आकर भीतर घुसने से इन्हें रोका और कहा-योगिराज, जरा ठहरिए, अभी मेरी पूजाविधि हो रही है। इसलिए जब तक वह पूरी न हो जाये तब तक आप यहीं ठहरें, भीतर न जायें। देवी के इस प्रकार मना करने पर भी अपने शिष्यों के आग्रह से वे न रुककर भीतर चले गए और पुरी के पश्चिम तरफ के परकोटे के पास कोई पवित्र जगह देखकर वहीं सारे संघ ने ध्यान करना शुरू कर दिया। अब तो देवी के क्रोध का कुछ ठिकाना न रहा। उसने अपनी माया से कोई कबूतर के बराबर डाँस तथा मच्छर आदि खून पीने वाले जीवों की सृष्टि रचकर मुनि पर घोर उपद्रव किया। विद्युच्चर मुनि ने इस कष्ट को बड़ी शान्ति से सह कर बारह भावनाओं के चिन्तन से अपने आत्मा को वैराग्य की ओर खूब दृढ़ किया और अन्त में शुक्ल-ध्यान के बल से कर्मों का नाश कर अक्षय और अनन्त मोक्ष के सुख को अपनाया ॥३७-४५॥

उन देवों, विद्याधरों, चक्रवर्तियों तथा राजाओं-महाराजाओं द्वारा, जो अपने मुकुटों में जड़े हुए बहुमूल्य दिव्य रत्नों की कान्ति से चमक रहे हैं, बड़ी भक्ति से पूजा किए गए और केवलज्ञान से विराजमान वे विद्युच्चर मुनि मुझे और आप भव्य-जनों को मंगल-मोक्ष सुख दें, जिससे संसार का भटकना छूटकर शान्ति मिले ॥४६॥

६९. श्रीगुरुदत्तमुनेराख्यानम्

नत्वा पंच गुरून्भक्त्या प्रोल्लसत्केवलाश्रित्ये। गुरुदत्तमुनेर्वच्चि चरित्रं भुवनोत्तमम् ॥१॥
 हस्तिनागपुरे धीमान् जिनधर्मधुरन्धरः। राजा विजयदत्ताख्यो विजया प्राणवल्लभा ॥२॥
 तयोः पुत्रोत्तिगंभीरो धीरोभूद्गुरुदत्तवाक्। पूर्वपुण्येन सम्पूर्णो रूपलावण्यमण्डितः ॥३॥
 तस्मै विजयदत्तोसौ राजा राज्यश्रियं निजाम्। दत्त्वा स्वयं मुनिर्जातो गुरुं नत्वा दिगम्बरम् ॥४॥
 लाटदेशेऽथ विख्याते द्रोणीमत्पर्वतान्तिके। सुधीश्चन्द्रपुरीपुर्या चन्द्रकीर्तिर्महीपतिः ॥५॥
 चन्द्रलेखा महाराज्ञी सुताभयमती सती। तेन श्रीगुरुदत्तेन परिणेतुं प्रयाचिता ॥६॥
 न दत्ता चन्द्रकीर्त्याख्यभूभुजा निजदेहजा। ततः कोपात्समागत्य स सैन्यो गुरुदत्तकः ॥७॥

६९. गुरुदत्त मुनि की कथा

जिनकी कृपा से केवलज्ञानरूपी लक्ष्मी प्राप्त हो सकती है, उन पंच परमेश्वरी-अर्हन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और साधुओं को नमस्कार कर गुरुदत्त मुनि का पवित्र चरित लिखा जाता है ॥१॥

गुरुदत्त हस्तिनापुर के धर्मात्मा राजा विजयदत्त की रानी विजया के पुत्र थे। बचपन से ही इनकी प्रकृति में गम्भीरता, धीरता, सरलता तथा सौजन्यता थी। सौन्दर्य में भी वे अद्वितीय थे। अस्तु, पुण्य की महिमा अपरम्पार है ॥२-३॥

विजयदत्त अपना राज्य गुरुदत्त को सौंपकर स्वयं मुनि हो गए और आत्महित करने लगे। राज्य की बागडोर गुरुदत्त ने अपने हाथ में लेकर बड़ी सावधानी और नीति के साथ शासन आरम्भ किया। प्रजा उनसे बहुत खुश हुई वह अपने नये राजा को हजार-हजार साधुवाद देने लगी। दुःख किसे कहते हैं, यह बात गुरुदत्त की प्रजा जानती ही न थी। कारण-किसी को कुछ, थोड़ा भी कष्ट होता था तो गुरुदत्त फौरन ही उसकी सहायता करता। तन से, मन से और धन से वह सभी के काम आता था ॥४॥

लाट देश में द्रोणीमान पर्वत के पास चन्द्रपुरी नाम की एक सुन्दर नगरी बसी हुई थी। उसके राजा थे चन्द्रकीर्ति। उनकी रानी का नाम चन्द्रलेखा था। उनके अभयमती नाम की एक पुत्री थी। गुरुदत्त ने चन्द्रकीर्ति से अभयमती के लिए प्रार्थना की कि वे अपनी कुमारी का ब्याह उसके साथ कर दें परन्तु चन्द्रकीर्ति ने उनकी इस बात से साफ इनकार कर दिया, वे गुरुदत्त के साथ अभयमती का ब्याह करने को राजी न हुए। गुरुदत्त ने इससे कुछ अपना अपमान हुआ समझा। चन्द्रकीर्ति पर उसे गुस्सा आया। उसने उसी समय चन्द्रपुरी पर चढ़ाई कर दी और उसे चारों ओर से घेर लिया। कुमारी अभयमती गुरुदत्त पर पहले ही से मुग्ध थी और जब उसने उसके द्वारा चन्द्रपुरी का घेरा जाना सुना तो वह अपने पिता के पास आकर बोली-पिताजी! अपने सम्बन्ध में मैं आपसे कुछ कहना उचित नहीं समझती, पर मेरे संसार को सुखमय होने में कोई बाधा या विघ्न न आए। इसलिए कहना या प्रार्थना करना उचित जान पड़ता है क्योंकि मुझे दुःख में देखना तो आप सपने में भी पसन्द नहीं